IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

महिला सशक्तीकरण के संदर्भ में लिंग भेद

ममता कुमारी
एम. ए., पीएच.डी.
समाजशास्त्र विभाग,
बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

शोध सार :

हिन्दुस्तान की वर्ण–व्यवस्था और अमेरिका की नस्ल व्यवस्था की तरह कल्पना की उपज है या यह बहुत गहराई तक फैली जैविक जड़ों से युक्त एक कुदरती विभाजन है? और अगर यह वाकई कुदरती विभाजन है, तो क्या पुरुषों को स्त्रियों से मिली वरीयता के भी कोई जीवन वैज्ञानिक स्पष्टीकरण हैं? पुरुषों और स्त्रियों के बीच की कुछ सांस्कृतिक, वैधानिक और राजनैतिक विषमताएँ दोनों लिंगों के बीच के जाहिर से भेदों को प्रतिबिम्बित करती हैं। समाज पौरुष और नारीत्व के साथ ऐसे अनेक गुण–धर्मों को जोड़ते रहे हैं, जिनमें से ज्यादातर का कोई दृढ़ जैविक आधार नहीं होता है। आज के एथेंस में स्त्रियाँ मतदान करती हैं, सार्वजनिक संस्थाओं के लिए चुनी जाती है, भाषण देती हैं, आभूषणों से लेकर इमारतों और सॉफ्टवेयर तक हर चीज को डिजाइन करती हैं, और विश्वविद्यालयों में जाती हैं। जितनी कामयाबी के साथ ये काम पुरुष करते हैं उतनी ही कामयबी के साथ इन कामों को करने में इन स्त्रियों के गर्भाशय उनके आड़े नहीं आते। आज के समय में महिला सशक्तिकरण एक चर्चा का विषय है, खासतौर से पिछड़े और प्रगतिशील देशों में क्योंकि उन्हें इस बात का काफी बाद में ज्ञान हुआ कि बिना महिलाओं की तरक्की और सशक्तिकरण के देश की तरक्की संभव नहीं है। महिलाओं के सशक्तिकरण का अर्थ उनके आर्थिक फैसलों, आय, संपत्ति और दूसरे वस्तुओं की उपलब्धता से है, इन सुविधाओं को पाकर ही वह अपने सामाजिक स्तर से उंचा कर सकती है।

कुंजी शब्द : महिला सशक्तिकरण, सामाजिक स्तर, वर्ण–व्यवस्था, कल्पना

परिचयः

वर्ण मध्ययुगीन हिन्दुस्तान के लिए जीवन–मरण का प्रश्न था, जबकि आधुनिक यूरोप के लिए यह वास्तव में अस्तित्वहीन चीज है, लेकिन एक श्रेणीबद्ध क्रम ऐसा है, जो तमाम ज्ञात मानव–समाजों में सर्वोच्च महत्व का रहा है : लैंगिक श्रेणीबद्ध क्रम। हर समाजों ने अपने को पुरुषों और स्त्रियों में विभाजित किया हुआ है। लगभग हर कहीं पुरुषों को बेहतर सुलूक मिलता रहा है, कम से कम कृषि क्रान्ति के बाद से। जब चीन

ने 'एक बचा' की नीति का कानून बनाया, तो बहुत से चीनी परिवारों ने लड़की के जन्म को दुर्भाग्य की तरह देखना जारी रखा। अभिभावक लड़का प्राप्त करने की एक और कोशिश देखने के लिए अक्सर नवजात बच्ची को फेंक देते थे या मार डालते थे। बहुत से समाजों में स्त्रियाँ महज पुरुषों, ज्यादातर मामलों में अपने पिताओं, पतियों या भाइयों की सम्पत्ति हुआ करती थी। पुरुषों और स्त्रियों के बीच विभाजन क्या हिन्दुस्तान की वर्ण–व्यवस्था और अमेरिका की नस्ल व्यवस्था की तरह कल्पना की उपज है या यह बहुत गहराई तक फैली जैविक जड़ों से युक्त एक कुदरती विभाजन है? और अगर यह वाकई कुदरती विभाजन है, तो क्या पुरुषों को स्त्रियों से मिली वरीयता के भी कोई जीवन वैज्ञानिक स्पष्टीकरण हैं? पुरुषों और स्त्रियों के बीच की कुछ सांस्कृतिक, वैधानिक और राजनैतिक विषमताएँ दोनों लिंगों के बीच के जाहिर से भेदों को प्रतिबिम्बित करती हैं। समाज पौरुष और नारीत्व के साथ ऐसे अनेक गुण–धर्मों को जोड़ते रहे हैं, जिनमें से ज्यादातर का कोई दृढ़ जैविक आधार नहीं होता है। आज के एथेंस में स्त्रियाँ मतदान करती हैं, सार्वजनिक संस्थाओं के लिए चुनी जाती है, भाषण देती हैं, आभूषणों से लेकर इमारतों और सॉफ्टवेयर तक हर चीज को डिजाइन करती हैं, और विश्वविद्यालयों में जाती हैं। जितनी कामयाबी के साथ ये काम पुरुष करते हैं उतनी ही कामयबी के साथ इन कामों को करने में इन स्त्रियों के गर्भाशय उनके आड़े नहीं आते। यह सच है कि राजनीतिक और व्यापार में उनका प्रतिनिधित्व अभी भी नीचे हैं – ग्रीस की संसद में सिर्फ 12 प्रतिशत स्त्रियाँ ही हैं, लेकिन राजनीति में उनकी भागीदारी को लेकर कोई वैधानिक रूकावट नहीं है और अधिकांश ग्रीकों का सोचना है कि सार्वजनिक संस्थाओं में स्त्रियों का काम करना निहायत सामान्य बात है।

पुरुष में ऐसा क्या है, जो इतना अच्छा है? कम से कम कृषि, क्रान्ति के बाद से ज्यादातर मानव–समाज पितृसत्तात्मक समाज रहे हैं, जो पुरुषों को स्त्रियों से ज्यादा महत्त्व देते थे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई समाज 'पुरुष' और स्त्री को किस तरह परिभाषित करता था, पुरुष होना हमेशा बेहतर हुआ करता था। पितृसत्तात्मक समाज पुरुषों को मर्दानगी का आचरण करने की शिक्षा देते हैं और स्त्रियों को स्त्रियोचित ढ़ंग से सोचने और आचरण करने की शिक्षा देते हैं और इन सीमाओं को लाँघने का दुस्साहस करने वाले किसी भी व्यक्ति को दण्डित करते हैं, हालाँकि जो इन शिक्षाओं का पालन करते हैं, उन्हें पुरस्कृत नहीं किया जाता। पौरुषपूर्ण माने जाने वाले गुणों को उन गुणों से ज्यादा महत्व दिया जाता है, जिन्हें स्त्रैण गुण माना जाता है और स्त्रीत्व के आदर्श को मूर्त रूप देने वाले समाज के सदस्यों को कम हासिल होता है, बजाए, उनके जो पुरुषत्व के आदर्श का उदाहरण होते हैं।

स्त्रियों के स्वास्थ्य और शिक्षा पर थोड़े–से संसाधनों को खर्च किया जाता है, उन्हें थोड़े से आर्थिक अवसर, कमतर राजनैतिक शक्तियाँ और आवाजाही की कमतर स्वतन्त्रता उपलब्ध होती है। लैंगिकता वह दौड़ है, जिसमें शामिल कुछ दौड़ने वाले सिर्फ कांस्य पदक के लिए ही प्रतिस्पर्धा करते हैं। यह सही है कि मुट्ठी भर स्त्रियों ने अपनी प्रमुख हैसियत बनाई है, जैसे कि मिस्त्र की क्लियोपेट्रा, चीन की साम्राज्ञी वू जेतियन (700 ईसवी) और इंग्लैंड की एलिजाबेथ प्रामि, लेकिन ये ऐसे अपवाद हैं, जिनसे सामान्य स्थिति पर कोई फर्क नहीं पड़ता। एलिजाबेथ के समूचे पैंतालीस वर्षीय शासन काल के दौरान संसद के सारे सदस्य पुरुष थे, शाही नौ सेना और सेना के सारे अधिकारी पुरुष थे, सारे वकील और न्यायधीश पुरुष थे, सारे बिशप और आर्चबिशप

पुरुष थे, सारे डॉक्टर और शल्य चिकित्सक पुरुष थे, सारे विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के सारे छात्र और प्रोफेसर पुरुष थे, सारे मेयर और जिलों के हाकिम पुरुष थे और लगभग सारे लेखक, वास्तुविद्, कवि, दार्शनिक, चित्रकार, संगीतकार और वैज्ञानिक पुरुष थे।

पितृसत्ता लगभग सभी कृषि–प्रधान और औद्योगिक समाजों में मानक व्यवस्था रही है। इसने राजनैतिक विप्लवों, सामाजिक क्रान्तियों और आर्थिक रूपान्तरणों को दृढतापूर्वक झेला है। भले ही विभिन्न संस्कृतियों में 'पुरुष' और 'स्त्री' की निश्चित परिभाषा में भेद हैं, इसका कोई सार्वभौमिक जैविक कारण है, जिससे कि लगभग सारी संस्कृतियाँ पौरुष को स्त्रीत्सव से ज्यादा महत्वपूर्ण मानती है। यह कारण क्या है यह हम नहीं जानते। परिकल्पनाएँ बहुत सारी हैं, लेकिन विश्वसनीय उनमें से कोई भी नहीं है।

पुरुषों का बाहुबल–सबसे आम परिकल्पना इस ओर संकेत करती है कि पुरुष स्त्रियां के मुकाबले मजबूत होते हैं और उन्होंने स्त्रियों को बलात् अधीन बनाने के लिए अपनी शारीरिक ताकत का जबरदस्त प्रयोग किया। इसी दावे का एक ज्यादा सूक्ष्म संस्करण यह तर्क देता है कि पुरुषों की सामर्थ्य उन्हें उन कामों पर एकाधिकार स्थापित करने की गुंजाईश देती है, जो कड़ी मेहनत की माँग करते हैं, जैसे कि हल चलाना और फसल काटना। यह चीज भोज्य उत्पादां पर उनका नियन्त्रण कायम करती है, जो नतीजन उनके राजनैतिक वर्चस्व में रूपान्तरित हो जाती है। बाहुबल पर यह जोर दो समस्याएँ पैदा करता है। पहली, यह कथन कि 'पुरुष स्त्रियों के मुकाबले मजबूत होते हैं' सिर्फ औसत रूप से, और कुछ निश्चित किस्म की सामर्थ्यों के सन्दर्भ में ही सही है। स्त्रियाँ सामान्यतः भूख, बीमारी और थकान से पुरुषों के मुकाबले कम प्रभावित होती है। ऐसी बहुत सी स्त्रियाँ हैं, जो बहुत सारे मर्दों के मुकाबले तेज दौड़ सकती हैं और ज्यादा वजन उठा सकती है। इससे भी बढ़कर और इस परिकल्पना के सामने सबसे बड़ी समस्या खड़ी करने वाली बात यह है कि स्त्रियों को समूचे इतिहास के दौरान मुख्यतः उन कामों से बाहर रखा गया है, जो बहुत कम शारीरिक उद्यम की माँग करते हैं (जैसे कि पुरोहिताई, कानून और राजनीति), जबकि उन्हें खेती, शिल्प उद्योग और गृहस्थी के कठोर शारीरिक श्रम में लगाकर रखा गया है। अगर सामाजिक शक्ति का बँटवारा सीधे–सीधे शारीरिक सामर्थ्य या आन्तरिक बल के सन्दर्भ में किया गया होता, तो स्त्रियों के हिस्से में कहीं ज्यादा सामाजिक शक्ति आनी चाहिए थी। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्यों की दुनिया में शारीरिक सामर्थ्य और सामाजिक शक्ति के बीच कोई सीधा रिश्ता है ही नहीं। आम तौर से साठ साल से ऊपर के लोग बीस–तीस साल के लोगों पर हुक्म चलाते हैं, बावजूद इसके कि ये बीस–तीस साल के लोग उम्र में अपने से बड़ों के मुकाबले ज्यादा ताकतवर होते हैं। अलबामा में उन्नीसवीं सदी के मध्य के एक सामान्य भूमिपति को उसके कपास के खेत में काम कर रहा कोई भी गुलाम कुछ पलों में ही पटकनी दे सकता था। मिस्र के प्राचीन राजाओं या कैथोलिक पोपों के चुनाव के लिए बॉक्सिंग की प्रतियोगिताओं का आयोजन नहीं किया जाता था। भोजन–खोजियों के समाजों में राजनैतिक वर्चस्व सामान्यतः उत्कृष्ट सामाजिक दक्षताओं से सम्पन्न लोगों का होता है, ना कि उनका जिनकी मांसपेशियाँ सबसे ज्यादा विकसित होती हैं। आपराधिक संगठनों का सरगना जरूरी तौर पर सबसे हट्टा–कट्टा आदमी नहीं होता। वह अक्सर एक अपेक्षाकृत बुजुर्ग व्यक्ति होता है, जो शायद ही कभी अपने मुक्कों का इस्तेमाल करता हो। इन गन्दे कामों के

लिए वह नौजवान और काबिल लोगों को रखता है। जो व्यक्ति ऐसा सोंचता है कि वह डॉन को पीटकर उसके गिरोह को अपने कब्जा में कर लेगा उसे अपनी गलती से सीखने के लिए पर्याप्त लम्बा जीवन मिलने की कोई सम्भावना नहीं है। यहाँ तक चिंपाजियों में भी उनका नेता दूसरे नरों और मादाओं के साथ गठबन्धन तैयार कर अपनी यह हैसियत बनाता है, नासमझ हिंसा के बूते पर नहीं। दरअसल, मानव इतिहास दर्शाता है कि बाहुबल और सामाजिक शक्ति के बीच अक्सर एक विपरीत रिश्ता रहा है। ज्यादातर समाजों में ये निचले वर्ग के लोग होते हैं, जो शारीरिक श्रम करते हैं। इससे भोजन–श्रृंखला में होमो सेपियन्स की स्थिति को समझा जा सकता है। अगर फूहड़ जिस्मानी काबिलियतें ही महत्वपूर्ण होती, तो सेपियन्स ने खुद को सीढ़ी के बीच के पायदान पर पाया होता, लेकिन उनकी दिमागी और सामाजिक दक्षताओं ने उन्हें सबसे उपर प्रतिष्ठित किया है। इसलिए यही स्वाभाविक है कि प्राणियों की प्रजाति के भीतर भी शक्ति–श्रृंखला का निर्धारण पशुबल से ज्यादा दिमागी और सामाजिक काबिलियतों से होगा। इसलिए यह विश्वास करना मुश्किल है कि इतिहास का सबसे ज्यादा प्रभावशाली और सबसे ज्यादा टिकाऊ सामाजिक सोपानक्रम स्त्रियों को भौतिक बलप्रयोग से दबाने की पुरुषों की काबिलियत पर खड़ास हुआ है। समाज के बदलतर लोग एक और परिकल्पना यह स्पष्ट करती है कि पुरुष वर्चस्व ताकत का नहीं, बल्कि आक्रामकता का परिणाम है। विकास–प्रक्रिया के लाखों वर्षों ने पुरुषों को स्त्रियों के मुकाबले बहुत ज्यादा हिंसक बना दिया है। इस परिकल्पना के मुताबिक, जब तक नफरत, लालच और दुव्यर्वहार का प्रश्न होता है, स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं, लेकिन जब कोई विकल्प शेष नहीं रह जाता, तो पुरुष कठोर शारीरिक हिंसा में लिप्त होने के पति कहीं ज्यादा उत्साहित होते हैं। यही वजह है कि समूचे इतिहास के दौरान युद्ध पर पुरुषों का परमाधिकार रहा है। युद्ध के दिनों में सशस्त्र बलों पर पुरुषों के नियन्त्रण ने उन्हें नागरिक समाज का नियंता भी बना दिया। इसके बाद उन्होंने नागरिक समाज पर अपने नियन्त्रण का इस्तेमाल ज्यादा से ज्यादा युद्ध लड़ने के लिए किया और जितने ज्यादा युद्ध होते गए, उतना ही समाज पर पुरुषों का नियन्त्रण बढ़ता गया। इस प्रतिक्रिया–चक्र (फीडबैक लूप) से युद्ध की सर्वव्यापकता और पितृसत्ता की सर्वव्यापकता दोनों का कारण स्पष्ट हो जाता है। पुरुषों और स्त्रियों की हार्मोन सम्बन्धी और संज्ञानान्तमक प्रणालियाँ के हाल के अध्ययनों ने इस धारणा की पुष्टि की है कि पुरुषों में वाकई कहीं ज्यादा आक्रामक और हिंसक प्रवृतियाँ होती हैं, और इसलिए वे औसतन, आम सैनिक सारे के सारे पुरुष होते हैं, तो क्या इससे यह नतीजा निकलता है कि युद्ध का प्रबन्धन करने वाले और उसके नतीजों का फायदा उठाने वाले भी पुरुष ही होने चाहिए? इसका कोई अर्थ नहीं है। यह तो कुछ इस तरह की बात हुई कि चूँकि कपास की खेती में लगे सारे गुलाम काले होते हैं, इसलिए भूमिपति भी काले ही होंगे। जिस तरह पूर्णतः काले कामगार बल को पूर्णतया गोरे प्रबन्धक तन्त्र द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है, उसी तरह पूर्णतः पुरुष सेना को पूर्णतः या कम से कम आंशिक स्त्री शासन द्वारा नियन्त्रित क्यों नहीं किया जा सकता? वस्तुतः समूचे इतिहास के दौरान अनेक समाजों में शीर्षस्थ अधिकारी निचले ओहदे (रैंक) से शुरूआत कर ऊपर तक नहीं पहुँचते थे। अभिजात्य, अमीर और शिक्षित लोगों को स्वतः ही अधिकारी का ओहदा दे दिया जाता था और उन्हें निचले ओहदे पर एक दिन भी काम नहीं करना पड़ता था।

आज के समय में महिला सशक्तिकरण एक चर्चा का विषय है, खासतौर से पिछड़े और प्रगतिशील देशों में क्योंकि उन्हें इस बात का काफी बाद में ज्ञान हुआ कि बिना महिलाओं की तरक्की और सशक्तिकरण के देश की तरक्की संभव नहीं है। महिलाओं के सशक्तिकरण का अर्थ उनके आर्थिक फैसलों, आय, संपत्ति और दूसरे वस्तुओं की उपलब्धता से है, इन सुविधाओं को पाकर ही वह अपने सामाजिक स्तर से उंचा कर सकती है।

महिला सशक्तिकरण के मार्ग में आने वाली बाधाएं

- पुरानी और रूढ़ीवादी विचारधाराओं के कारण भारत के कई सारे क्षेत्रों में महिलाओं के घर छोड़ने पर पाबंदी होती है। इस तरह के क्षेत्रों में महिलाओं को शिक्षा या फिर रोजगार के लिए घर से बाहर जाने के लिए आजादी नहीं होती है।
- शोषण भी महिला सशक्तिकरण में एक बड़ी बाधा है। नीजी क्षेत्र जैसे कि सेवा उद्योग, सॉफ्टवेयर उद्योग, शैक्षिक संस्थाएँ और अस्पताल इस समस्या से सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं।
- भारत में अभी भी कार्यस्थानों महिलाओं के साथ लैंगिग स्तर पर काफी भेदभाव किया जाता है। कई सारे क्षेत्रों में तो महिलाओं को शिक्षा और रोजगार के लिए बाहर जाने की भी इजाजत नहीं होती है।
- भारत में महिलाओं को अपने पुरुष समकक्षों के अपेक्षा कम भुगतान किया जाता है और असंगठित क्षेत्रों में यह समस्या और भी ज्यादा दयनीय है। खासतौर से दिहाड़ी मजदूरी वाले जगहों पर यह सबसे बदतर है।
- महिलाओं में अशिक्षा और बीच में पढ़ाई छोड़ने जैसी समस्याएं भी महिला सशक्तिकरण में काफी बड़ी बाधाएं हैं। वैसे तो शहरी क्षेत्रों में लड़किया शिक्षा के मामले में लड़कों के बराबर है पर ग्रामीण क्षेत्रों में इस मामले वह काफी पीछे हैं।
- भारत में बाल विवाह जैसी कुरीति को काफी हद तक कम कर दिया गया है लेकिन 2018 में यूनिसेफ के एक रिपोर्ट द्वारा पता चलता है कि भारत में अब भी हर वर्ष लगभग 15 लाख लड़कियों की शादी 18 वर्ष से पहले ही कर दी जाती है, जल्द शादी हो जाने के कारण महिलाओं का विकास रूक जाता है और वह शारीरिक तथा मानसिक रूप से व्यस्क नहीं हो पाती हैं।
- कन्या भ्रूण हत्या या फिर लिंग के आधार पर गर्भपात भारत में महिला सशक्तिकरण के रास्ते में आने वाले सबसे बड़ी बाधाओं में से एक है। कन्या भ्रूणहत्या का अर्थ लिंग के आधार पर होने वाली भ्रूण हत्या से है, जिसके अंतर्गत कन्या भ्रूण का पता चलने पर बिना माँ के सहमति के ही गर्भपात करा दिया जाता है।

महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए कई सारी योजनाएं चलायी जा रही है।

- ❖ बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं योजना
- ❖ महिला हेल्पलाइन योजना
- ❖ उज्जवला योजना
- ❖ सपोर्ट टू ट्रेनिंग एंड एम्प्लॉयमेंट प्रोग्राम फॉर वूमेन (स्टेप)
- ❖ महिला शकित केंद्र
- ❖ पंचायती राज योजनाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण।

निष्कर्ष :

भारत को महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने पर भी ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। हमें महिला सशक्तिकरण के इस कार्य को समझने की आवश्यकता है क्योंकि इसी के द्वारा ही देश में लैंगिग समानता और आर्थिक तरक्की को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ :–

[1] शर्मा, एन. (2005) अग्रेरिअन रिलेशन्स एंड सोशिओ–इकोनॉमिक चेन्ज इन बिहार, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 40 (10), 960–972

[2] प्रसाद, पी.एच. (1975), अग्रेरिअन अनरेस्ट एंड इकोनॉमिक चेंज इन रूरल बिहार : दि थ्री केस स्टडीज इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 10 (24), 931–937

[3] सिन्हा, ए. (1996), सोशल मोबलाइजेशन इन बिहार : ब्यूरोकेटिक फ्यूडलिज्म एंड डिस्ट्रीब्यूटिव जस्टिस इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 31 (51), 3287–3289

[4] प्रसाद, पी.एच. (1980) राइजिंग मिडल पेजन्ट्री इन नॉर्थ इन्डिया, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 15 (5/7), 215–219

[5] नेदुमपरा, जोस जे. (2004), पॉलिटिकल इकोनॉमी एंड क्लास कन्ट्राडिक्शन, नई दिल्ली : अनमोल पब्लिकेशन